

नियमसार, गाथा १६६ ।

अप्पसरूवं पेच्छदि लोयालोयं ण केवली भगवं ।

जड़ कोड़ भणड़ एवं तस्स य किं दूसणं होड़ ॥१६६॥

प्रभु केवली निजरूप देखें और लोकालोक ना ।

यदि कोड़ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या ॥१६६ ॥

आहाहा ! एक बात तो ऐसी है कि जहाँ-जहाँ आत्मा परमाणु के समीप में है, वह परमाणु को स्पर्शता नहीं है । कर्म, शरीर या कोई भी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय के शरीर । क्योंकि आत्मा तो ज्ञान और दर्शन (स्वरूप है), वह किसी चीज़ को स्पर्श नहीं करता । आहाहा ! मात्र उसकी भूल यह है कि आत्मा के अतिरिक्त किसी भी एक परमाणु से लेकर लोकालोक (लोक) के परमाणु, उन्हें कुछ भी, वह कभी स्पर्श नहीं तो उनका किया तो है नहीं, तथा करा सकता नहीं । क्योंकि जड़ का कुछ करा नहीं सकता । मात्र होता है, उसे अनुमोदता है, वह उसका अज्ञान है । क्या कहा ? आहा !

यह आत्मा... यहाँ कहते हैं कि अपने स्वरूप में है । वह पर को देखता ही नहीं । देखता नहीं वह तो ठीक, यहाँ तो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ वह-वह परमाणु मन, वचन और काया के परमाणु उसके काल में, उसके क्षेत्र में उसकी पर्याय से हो, परन्तु आत्मा उन्हें स्पर्श नहीं करता । आहाहा ! आत्मा तो अरूपी चीज़ है । अरूपी आत्मा है । वह रूपी एक रजकण से लेकर लोकालोक के परमाणु, स्कन्धों को—उन्हें कभी छूता, स्पर्श नहीं करता । आहाहा ! मात्र करता हो तो इतना कि

वह उनका कर नहीं सकता कुछ, तथा करा नहीं सकता, मात्र करता हो, उसे अपने अभिमान से अनुमोदन देकर चार गति में भटकता है। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

पूरी दुनिया के पुद्गल एकेन्द्रिय के शरीर से लेकर पंचेन्द्रिय के शरीर और बड़े स्कन्ध पूरे, उन्हें कभी चैतन्य अरूपी भगवान उन्हें कभी स्पर्शता ही नहीं। क्योंकि स्वयं स्पर्शरहित चीज़ है। वह स्पर्श कहाँ से? आहाहा! वह जहाँ रहा, वहाँ स्वयं परमाणु जड़ से तो भिन्न है ही। उसके साथ तो कुछ है नहीं। परन्तु उस जड़ का कर सकता तो नहीं। वह अरूपी ज्ञानघन और (जड़) वह रूपी, उसे करे क्या? उसे करा नहीं सकता कि भाई! तू इसका-जड़ का कर। वह माने भले कि मैं कराता हूँ, परन्तु करा नहीं सकता। मात्र होता हो, उसे अज्ञानभाव से अनुमोदन देता है कि यह तुमने अच्छा किया, यह तुमने यह किया, तुमने यह किया और तुमने यह किया। आहाहा! मण में आठ पन्सेरी की भूल। आठ पन्सेरी समझ में आया? मण में मण की भूल (अर्थात् कि) पूरी-पूरी भूल। आहाहा!

अरूपी प्रभु रूपी जगत की किसी चीज़ को या अरूपी धर्मास्तिकाय आदि, उन्हें कभी छूता नहीं, छुआ नहीं। आहाहा! उसका कभी एक तिनका तोड़ा नहीं, छोड़ा नहीं। स्पर्शा नहीं, वहाँ (छोड़ने की बात कहाँ रही)? आहाहा! इसलिए पूरी दुनिया के पुद्गल, जहाँ-जहाँ बसा वहाँ वह पुद्गल, उसकी-उसकी पर्याय से परिणमन कर पुद्गल खड़े हैं, उन्हें आत्मा ने स्पर्श नहीं किया तो कर्ता तो है नहीं, इसी तरह करा सकता नहीं। क्योंकि उसके अधिकार की बात नहीं है। जड़ की पर्याय जड़ से परिणमित होती है, उसे वह करा सकता नहीं है। आहाहा! परन्तु करा सकता हूँ और करता है, उसका अनुमोदन कर सकता हूँ, यह मान्यता उसका भ्रम है। आहाहा! गजब बात। क्योंकि प्रभु आत्मा तो अरूपी है और वह भी ज्ञान और दर्शन और आनन्द का धारक है। अब यदि उस त्रिकाली की दृष्टि से देखें, तब तो उसकी पर्याय में परपदार्थ का स्पर्श तो नहीं परन्तु उसकी पर्याय में पर का करना, कराना, अनुमोदन करने का जो विकल्प है, वह उसकी पर्याय में अज्ञान से है। वस्तु के स्वरूप से वह कुछ है नहीं। आहाहा!

आत्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थ को चाहे जिस क्षेत्र में हो, वह परमाणु अपनी पर्याय से, अपनी पर्याय से वहाँ परिणम रहा है। उसे यह आत्मा ऐसा माने कि यह मुझसे होता है। वह भ्रमणा कर सकता है। आहाहा! तथा भ्रमणा करावे कि यह तुम करो... यह

करो... ऐसे भ्रमणा करा सकता है अर्थात् वह भ्रमणा करे तो करा सकता है, ऐसा कहा जाता है। बाकी पर को भ्रमणा करा भी नहीं सकता। भ्रमणा। परमाणु का तो कर नहीं सकता परन्तु दूसरे की भ्रमणा वह नहीं कर सकता। आहाहा!

एक बात रह गयी। इसने स्वयं अपनी जाति को जाना नहीं कि मैं एक आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ और जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। ऐसी चीज़ तो अपनी जाना नहीं, इसलिए जिसे जानने की ओर झुकाव है, उसमें वह रुककर मानता है कि मैं यह करता हूँ, यह कराता हूँ, इस कर्ता को अनुमोदन करता हूँ। दुकान अच्छी चलती हो, नौकर बराबर काम करते हों तो प्रसन्न होता है कि बहुत अच्छा काम करते हैं। आहाहा! ऐसी बात। ऐई! शान्तिभाई! ऐसा है।

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप अरूपी है। वह अपने को छोड़कर पर—रूपी या अरूपी पदार्थ को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तब यह भ्रम क्या? पूरे दिन अपने को भूलकर यह किया... यह करूँ... यह करूँ... यह किया... व्यापार किया, धन्धा किया, पैसे मिले, उसे पैसे दिये-लिये... आहाहा! पूरे लोक में जितने परमाणुओं का परिणमन होता है, उनका परिणमन स्वतन्त्र पुद्गल का है। जीव वहाँ खड़ा रहकर उसे देखनेवाला है। वह देखनेवाला है, ऐसा न मानकर मैं उन्हें कर सकता हूँ—ऐसी मान्यता के कारण परिभ्रमण कर रहा है। आहाहा! समझ में आया? घीयाजी! बहुत कठिन बात, प्रभु!

यहाँ तो ऐसा विचार आया कि... अरूपी आत्मा तो अत्यन्त भिन्न है न! वह अन्दर के कर्म के रूपी को भी स्पर्श नहीं करता। शरीर को स्पर्श नहीं करता और जहाँ जाए वहाँ, जो-जो शरीर मिले, उसे कभी स्पर्श नहीं करता और उसे रख नहीं सकता, उसे सुधार नहीं सकता, उसे बिगाड़ नहीं सकता। आहाहा! मात्र अभिमान में अपना ज्ञान और दर्शन ऐसा जानना-देखना स्वरूप है। वह भी पर को जानना-देखना, जगत की जड़ की-पर की अवस्था उस काल में होने पर, उसे जानना-देखना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! करना तो मिथ्यात्व है, परन्तु उसे जानना, अपने में वह नहीं है, उसे जानना (कहना), इसका नाम व्यवहार और अपने में है, उसे जानना (कहना), इसका नाम निश्चय, इसका नाम सत्य और अपने में नहीं है, इसे जानना, उसका नाम उपचार। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। यह, शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा से परदर्शन का (पर को

देखने का) खण्डन है। क्या कहते हैं ? आत्मा दर्शनस्वरूप है। वह पर को देखता ही नहीं। आहाहा! निश्चयनय से पर को देखता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी पर का करना, मैं पर का कर दूँ, सवेरे उठे, दुकान पर जाए, नौकरों से काम लेना, दबाव करना, अपनी होशियार की छाप डालना (कि) जिससे इसे देखकर बिना कहे काम करे। आहाहा! यह सब भ्रम है। आहाहा! भगवान अरूपी चैतन्य, वह पर को कहीं स्पर्श नहीं करता, करता नहीं, कराता नहीं, करता को अनुमोदन नहीं करता। मात्र व्यवहार कहें तो वह पर को जानता-देखता है, इतनी मर्यादा है। व्यवहार कहें तो इतनी मर्यादा है। वह भी यहाँ इनकार किया है। आहाहा! वह भी यहाँ निश्चय से निषेध किया है कि पर को जानना-देखना भी झूठा है। आहाहा! ऐसी बात है।

चैतन्यतत्त्व अरूपी ज्ञान-दर्शन-आनन्द से भरपूर भगवान, इस अरूपी ने अरूपीपने... यह कहा न ? देखो न शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा से परदर्शन का (पर को देखने का) खण्डन है। यद्यपि व्यवहार से एक समय में तीन काल सम्बन्धी पुद्गलादि द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानने में समर्थ सकल-विमल केवलज्ञानमयत्वादि विविध महिमाओं का धारण करनेवाला है,... तीन काल-तीन लोक... एक समय की संयोगी चीज़ को कर सकने को समर्थ नहीं है परन्तु तीन काल-तीन लोक को जानने-देखने में समर्थ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तथापि वह भगवान,... केवलज्ञान द्वारा पर को जानने-देखने को समर्थ हैं, व्यवहार से। तो भी केवलदर्शनरूप तृतीय लोचनवाला होने पर भी,... आहाहा! केवलदर्शन अन्दर खिला, जो उसका मूल स्वभाव है, वह स्वभाव जहाँ पूर्ण प्रगट हुआ, वह स्व के आश्रय से (हुआ), पर का आश्रय जरा भी नहीं है। पर को तो स्पर्श भी नहीं करता, वहाँ आश्रय-फाश्रय कहाँ? कि संहनन मजबूत था, इसलिए केवल(ज्ञान) हुआ। आहाहा! उपदेश मिला, इसलिए केवलज्ञान हुआ, अच्छा संग मिला, इसलिए केवलज्ञान हुआ, यह वस्तु इसमें लागू नहीं पड़ती। वस्तु स्वतन्त्र है। पर के साथ कुछ 'नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः' यह श्लोक आ गया है। (समयसार कलश) २००। 'नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः' स्व और पर को किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! भ्रमणा करके मान रहा है कि मुझे और उसे इतना सम्बन्ध है। मेरा उसके साथ इतना सम्बन्ध है। उसका पुत्र

विवाह करे, तब मुझे अमुक तो देना पड़े, मेरा पुत्र विवाह करे तो यह देना पड़े। यह सब भ्रमणा है। आहाहा! परोसा देना पड़े, यह करना पड़े। क्या करता है? प्रभु! तू ज्ञान और दर्शन है न! वह चीज़ हो, उसे जाने-देखे ऐसा कहना वह व्यवहार है, तो उस चीज़ को कुछ करे, करावे और अनुमोदे, प्रभु! यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! लोगों से भारी उल्टा।

आत्मा अरूपी अत्यन्त भिन्न तत्त्व अन्दर है और यह अत्यन्त भिन्न शरीर, वाणी, मन, रजकण, जिन्हें कुछ खबर भी नहीं कि हम जड़ हैं या नहीं और जिन्हें खबर है, वह उसे स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! वह जड़ चीज़ है, उसे खबर नहीं की हम जड़ हैं। तथा साथ में जाननेवाला है, उसे उसकी खबर नहीं की यह जाननेवाला है। जड़ को खबर कहाँ है! आहाहा! जड़ को जड़ की खबर नहीं, जड़ को चैतन्य की खबर नहीं। अब रहा चैतन्य। उस चैतन्य को चैतन्य की खबर है। परन्तु कहते हैं कि व्यवहार से ऐसा कहते हैं कि पर को देखता है, उसका भी यहाँ हम खण्डन करते हैं। आहाहा! बहुत कठिन बात है। दुनिया के साथ मिलान खाये ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं कि केवलज्ञान से लोकालोक को जाने, ऐसा महिमावन्त है। तथापि वह भगवान, केवलदर्शनरूप तृतीय लोचनवाला होने पर भी,... उसे केवलदर्शन होने पर भी, केवलज्ञान से जाने और केवलदर्शन अन्दर होने पर भी परम निरपेक्षपने के कारण... आहाहा! पर को देखने की कोई अपेक्षा ही नहीं है। वह तो दर्शन और ज्ञान में ही है। आहाहा! भगवान स्वयं तो दर्शन और ज्ञानस्वरूप में ही है। पर को देखने और जानने वह नहीं जाता। आहाहा! पर का करना और कराना, अनुमोदन करना, वह तो उसमें ही नहीं परन्तु पर को देखने और जानने जाता नहीं। आहाहा! क्योंकि जानने-देखने की जो अवस्था है, वह तो अरूपी है और यह चीज़ जो सब है, वह तो रूपी है। अरूपी-अरूपी धर्मास्तिकाय है, वह अलग बात है। यह पहले कहा। केवलज्ञान में सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय जाने परन्तु उसके साथ दर्शन है, वह भी उसे देखे, ऐसा नहीं। उसका खण्डन करते हैं, निश्चयनय। आहाहा! स्पर्श नहीं करता, करता नहीं, कराता नहीं, कर्ता को अनुमोदता नहीं। मात्र होता है उसमें, उसे मैं देखता हूँ। होता है, उसे मैं देखता हूँ, इस व्यवहार का भी यहाँ निषेध किया है। अरे! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : तन्मय नहीं होता, यह बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को स्पर्श नहीं करता, फिर कहाँ बात रही। वह तो अरूपी, यह चीज़ रूपी। चाहे जिस स्थान में हो, रूपी को स्पर्श भी नहीं करता, स्पर्श भी नहीं किया और तीन काल-तीन लोक में स्पर्श ही नहीं करेगा। आहाहा!

ऐसा जो भगवान अरूपी है, उसे कहते हैं कि ज्ञान से ऐसा कहते हैं कि ज्ञान से तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा कहें। ऐसा माहात्म्य आया न? **केवलज्ञानमयत्वादि विविध महिमाओं का धारण करनेवाला है...** ऐसे विविध गुण का धारक आत्मा है। **तथापि वह भगवान, केवलदर्शनरूप तृतीय लोचनवाला होने पर भी...** आहाहा! आँख तो है। केवलज्ञान लोचन / आँख है। केवलदर्शन अन्दर तीसरा लोचन है। तीन काल-तीन लोक को देखने की शक्ति है। ऐसी शक्ति होने पर भी... आहाहा! है? **परम निरपेक्षपने के कारण...** पर को देखना, उसकी अपेक्षा छोड़ दो, निरपेक्षरूप से लो तो दर्शन, दर्शन में ही रहा है। आहाहा! दर्शन पर को देखने में जाता है, ऐसा है नहीं। देखने में जाता है, ऐसा तो है नहीं परन्तु देखता है, पर को देखता है (—ऐसा नहीं है), वह तो अपनी अवस्था को देखता है। उस अवस्था को देखता है, उस पर को देखता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म!

अब यहाँ तो दया पालो, भक्ति करो, व्रत करो। प्रतिमा, मन्दिर बनाओ। होता है, ऐसा शुभभाव होवे, तब वह क्रिया सामने होने की होती है, होने की हो तो होती है, हों! यह शुभभाव किया, इसलिए वहाँ होती है, ऐसा नहीं है। यहाँ तो कहते हैं पर को शुभभाव से करे, वह तो है नहीं... आहाहा! मन्दिर और शास्त्र शुभभाव से करे, वह तो है ही नहीं। क्योंकि वह पुद्गल पर जड़ है। जड़ को व्यवहार से कहे, ऐसा तो नहीं है। परन्तु केवलज्ञान के साथ रहे हुए केवलदर्शन को देखे, वह भी व्यवहार है, वह निश्चय नहीं। आहाहा! कहाँ पहुँचना? लोगों को नीचे से अभी आगे आया नहीं। दोनों है? गोगीभाई है, दोनों व्यक्ति थे। दो भाई कहाँ से इकट्ठे हो गये। कहो, समझ में आया? आहाहा! ओहोहो!

यहाँ तक लिया कि **केवलज्ञानमयत्वादि विविध महिमाओं का धारण करनेवाला है...** है न? धारण करनेवाला। कौन? आत्मा। आहाहा! केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता, अनन्त प्रभुता ऐसे अनन्त गुण का धारक आत्मा वह दर्शन से पर को देखे, ऐसा कहना वह भी निश्चयनय से नहीं है, सत्यदृष्टि में ऐसा नहीं है, वह तो

उपचार का कथन है। क्योंकि इसमें जाता नहीं और जो चीज़ है, वह अपने में आती नहीं, उसे जानना-देखना कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसा उपदेश! सूक्ष्म बात है, बापू! तेरा तत्त्व ही अलग है। तत्त्व है या नहीं? यह कहा न यहाँ? पहले कहा न?

यद्यपि व्यवहार से एक समय में तीन काल सम्बन्धी पुद्गलादि द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानने में समर्थ... यह भी व्यवहार। आहाहा! पर को जानने में समर्थ, यह भी व्यवहार ज्ञान। ऐसा सकल-विमल केवलज्ञानमयत्वादि... केवलज्ञान आदि अनन्त गुण का धारक प्रभु। आहाहा! तथापि वह भगवान्,... ऐसी महिमा को धारण करनेवाला है। ज्ञान में पर को जाननेवाला कहा। समझ में आया? आहाहा! कहा या नहीं? सकल-विमल केवलज्ञानमयत्वादि विविध महिमाओं का धारण करनेवाला है,... जानने में समर्थ। इसमें आया न? जानने में समर्थ। आहाहा! तो भी... अपने ज्ञानगुण से पर को स्पर्श भी नहीं करता परन्तु व्यवहारनय से पर को जानता है। व्यवहारनय से पर को जानता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े। मार्ग ऐसा है, बापू! देह चली जाएगी और आत्मा की सत्ता तो रहेगी। वह कहाँ जाएगा? किस जगह अवतरित होगा, किस जगह उपजेगा? आहाहा!

अनन्त-अनन्त बार अभिमान कर-करके मैंने यह किया... मुझे आता था। दुकान का आता था, वह मैं करता हूँ, मेरी होशियार से यह दुकान अच्छी चलती है। आहाहा! अरे! एक परमाणु पलटाने की शक्ति भगवान् आत्मा में नहीं है। आहाहा! ऐई! मनसुख! यह आणन्दजी तो वहाँ दुकान में बहुत करता था। बाहर से ऐसे लावे और ऐसे करे, ऐसे करे। तीन-तीन पुटी बात उसे याद थी। एक तो जिस भाव से माल आवे, उसमें कितना खपा और कितना नहीं खपा, वह ख्याल में था और उस माल का भाव अभी क्या है, वह उसके ख्याल में था। आहाहा! यह तो तेरे जन्म पहले की (संवत्) १९७४ के (वर्ष की) बात है। आहाहा! अरे! स्वयं भूला, अपनी जाति क्या है, उस ओर तो लक्ष्य किया नहीं। अपनी जाति चैतन्य जाति है। वह व्यवहार से पर को जाननेवाला भले कहा। ऐसा कहा न। आहाहा!

तो भी... आहाहा! परम निरपेक्षपने के कारण निःशेषरूप से (सर्वथा) अन्तर्मुख होने से... दर्शन तो अन्तर्मुख है। आहाहा! वह दर्शनगुण अन्तर्मुख है। वह केवल स्वरूपप्रत्यक्षमात्र व्यापार में लीन... केवल स्वरूपप्रत्यक्षमात्र, अपने स्वरूपप्रत्यक्षमात्र में

दर्शन लीन है। लीन ऐसे निरंजन... ऐसे निरंजन निज सहजदर्शन द्वारा... ऐसे निज सहज दर्शन द्वारा सच्चिदानन्दमय आत्मा को... आहाहा! बहुत संक्षिप्त भाषा परन्तु कितना भरा है! किसी का करे नहीं, यह तो आया। परन्तु केवलज्ञानमय आदि अनन्त सम्पदाओं से भरपूर है, इसलिए उसे व्यवहार से पर को जानता है, ऐसा कहते हैं। तथा यह दर्शन है, वह आत्मा व्यवहार से पर को देखता है, ऐसा कहा जाता है। निश्चय से तो देखता नहीं। आहाहा! अभी तो पर का करना छोड़ना सुहाता नहीं। आहाहा! पर का करना, हम यह करते हैं, तुझे वह स्पर्शता नहीं, हमें यह आता है। आहाहा! अभिमान ने मार डाला है। जीव को मार डाला है। मार डाला अर्थात् समझे? कलश-टीका में आता है। मार डाला। मरणतुल्य कर डाला। जिसका स्वरूप जानना-देखना, उसे पर का करना-कराने में मार डाला। तू यह जानना-देखना नहीं और तुझे यह करना और कराना सौंपते हैं। वह जीव का ज्ञाता-दृष्टापने को मार डाला। आहाहा! यह भ्रान्ति त्रिलोकनाथ तीर्थकर की वाणी से मिटेगी, ऐसा लिखा है। समझ में आया? कलश-टीका में। आहाहा!

ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ पूर्व पढ़ गया, क्रिया में भी छह-छह महीने के अपवास... आहाहा! बालब्रह्मचारी (रहा), जिन्दगी में विषय (सेवन किया) नहीं। परन्तु प्रभु स्वयं अन्दर कौन है? आहाहा! उसकी सत्ता का कार्य क्या है? वह निश्चय से तो उसकी सत्ता का कार्य अन्तर में लीन रहना है। स्वरूप उस स्वरूप में लीन रहे, वह उसका कार्य है। आहाहा! उसे पर को देखना कहना, वह भी व्यवहार है। पर को जानना कहना, वह व्यवहार है। यह तो पहले जानने का कहा। जाननेवाला होने पर भी, दर्शन को पर को देखने का नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी साधारण बात है। परन्तु अन्दर बड़ी बात है, भाई! आहाहा! पूरी दुनिया के तत्त्व से तेरा तत्त्व अत्यन्त भिन्न है। कुछ सम्बन्ध नहीं होता। नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः। दूसरे जीव के साथ और दूसरे परमाणु के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। अकेला स्वयं भगवान है। द्रव्य-गुण तो ध्रुव है परन्तु अपनी उल्टी-सुल्टी पर्याय में संसार रहा।

यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञान द्वारा जिसके साथ दर्शन का सम्बन्ध है, ऐसे केवलज्ञानमयपने को धारण करनेवाला व्यवहार से पर को जानता है तथा वह व्यवहार से दर्शन पर को देखता है, उसका तो यहाँ निषेध किया। आहाहा! है न? सच्चिदानन्दमय

आत्मा को निश्चय से देखता है (परन्तु लोकालोक को नहीं)... आहाहा! अपने को देखता है, पर को नहीं। आहाहा! ऐसा जो कोई भी शुद्ध अन्तःतत्त्व का वेदन करनेवाला... ऐसा जो कोई शुद्ध अन्तःतत्त्व में लीन वेदन करनेवाला... आहाहा! (जाननेवाला, अनुभव करनेवाला) परम जिनयोगीश्वर... परम जिन वीतरागी मुनि, सन्त आदि शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा से कहता है,... कि पर को देखता नहीं, ऐसा कहता है। शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा से कहता है, उसे वास्तव में दूषण नहीं है। आहाहा! कितनी लम्बी बातें। समझ में आया? पूरी दुनिया में तेरा तत्त्व वह अत्यन्त भिन्न रहा है। कभी किसी को स्पर्श नहीं किया है, कभी स्पर्श नहीं किया है, स्पर्श नहीं करता और स्पर्श नहीं करेगा। आहाहा! मात्र केवलज्ञान द्वारा व्यवहार से जाननेयोग्य जानता है। तथा दर्शन भी देखता है, ऐसा नहीं। निश्चय से तो वह देखता नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! पर को कोई देखने की अपेक्षा नहीं। ऐसा आया न? निरपेक्ष नहीं आया? पहले निरपेक्ष आया। निरपेक्षपने के कारण निःशेषरूप से (सर्वथा)... निःशेष अर्थात् सर्वथा। सर्वथा निरपेक्षपने। पर की कोई अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म पड़े। रात्रि को प्रश्न करना। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! ओहो! यह तत्त्व अन्दर केवलज्ञान आदि अनन्त गुण का धारक होने पर भी और वह केवलज्ञानादि पर को जाननेवाला... है न?

तीन काल सम्बन्धी पुद्गलादि द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानने में समर्थ... होने पर भी। आहाहा! कितनी बात करते हैं! अपना ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसे स्वभावमय होने पर भी। आहाहा! उसके साथ दर्शनरूप जो तृतीय लोचन। देखना वह तीसरा लोचन, आहाहा! वह उससे पर को देखे, यह बात व्यवहार से है, निश्चय से नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम। वस्तु है न? तत्त्व है न? तत्त्व है तो उसमें सत्त्व है या नहीं? तत्त्व का सत्त्व है या नहीं? तत्त्व सत् है, तो सत् का सत्त्व है या नहीं? वह सत्त्व पर को देखता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! अपना सत्त्व दर्शन-ज्ञान है। यह व्यवहार से कहने में आता है कि केवलज्ञान पर को जानता है। परन्तु उसके साथ तृतीय लोचनदर्शन पर को देखता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो अपने निजस्वरूप में... ऐसा कहा न? आहाहा!

ऐसा जो कोई भी शुद्ध अन्तःतत्त्व का वेदन करनेवाला... आहाहा! जिसे आत्मा शुद्धस्वरूप परम आनन्द को वेदन करनेवाला... आहाहा! (अनुभव करनेवाला) परम जिनयोगीश्वर... परम जिन योगी मुनि। उत्कृष्ट बात ली है न! शुद्धनिश्चयनय की...

शुद्धनिश्चयनय के कथन से, विवक्षा। शुद्धनय के कथन द्वारा उसे वास्तव में दूषण नहीं है। पर को (नहीं) देखे, वह शुद्धनिश्चयनय से दूषण नहीं है। आहाहा! यह प्रश्न किया था न किसी ने? कि पर को जानना, वह मिथ्यात्व है न? शान्तिभाई कहे, रात्रि में। जानना, वह मिथ्यात्व नहीं; जानना, वह व्यवहार है। मूल यह मार्ग ही पूरा बदल गया है। पूरा भटकने का मार्ग... आहाहा! परम सत्य कोई भी संयोग में तीन काल-तीन लोक के संयोगों में आया तो भी उन संयोगों को स्पर्श नहीं किया। आहाहा! संयोगों को स्पर्श नहीं किया।

निश्चय से केवलज्ञान अपने को जानता है। व्यवहार से पर को जानता है तो दर्शन को ही पर को जानना (देखना), ऐसा कहना, उसे पर की कोई अपेक्षा बिना अपने को देखता है, ऐसा लेना। आहाहा! इसमें क्या करना और क्या... सामायिक करना या यह जानकारी करना? यह सब कहीं पड़ा रहा। आहाहा!

[अब, इस १६६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] आहाहा! जहाँ-जहाँ प्रभु तू है, वहाँ-वहाँ तुझे परद्रव्य के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। सर्वार्थसिद्धि में है, मुक्तिशिला में हो... आहाहा! सातवें नरक में हो या निगोद में हो। आहाहा! परन्तु प्रभु आत्मा वह परमाणु को बिल्कुल स्पर्श नहीं किया, बिल्कुल छुआ नहीं करता। आहाहा! वह तो अपनी सत्ता अपने में रखकर अपने में रहा है, पर की सत्ता को स्पर्श भी नहीं किया। अपनी सत्ता है, वह पर की सत्ता को स्पर्श ही नहीं करती। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़े।

मुमुक्षु : ऐसा ही सुनना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बात सत्य। यह तो युवकों को देखकर कहते हैं। युवकों को इतना सुनना कठिन। आहाहा!

परम सत्य। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव का निश्चय का परम कथन, परम सत्य। क्या कहते हैं? कि पर को देखे तो पर में लीन होता है, ऐसा नहीं है। वह तो अपने में लीन है। आहाहा! अपने में लीन है तो निश्चय से अपने को देखता है और जानता है। आया है न? यह अन्दर आया है न? शुद्ध अन्तःतत्त्व को वेदन करनेवाला। आहाहा! पर को जाननेवाला-देखनेवाला नहीं। आहाहा! अपने को वेदन करनेवाला, जाननेवाला। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तेरे घर की है, नाथ! आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुण का धनी, रंक होकर फिरे, वह किसी के कारण नहीं, कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! स्वयं की भूल (हुई है)। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' अपनी चीज़ बेहद ज्ञान-दर्शन-आनन्द... आहाहा! जिसका उठान अर्थात् पानी में उफान आता है न? उफान। परन्तु वह उफान पोला है। क्या कहा? उस उफान का होता है न? वह तो पोला होता है। ऐसा बढ़ा, इसलिए पानी का वजन बढ़ गया, ऐसा नहीं है। यह तो ज्ञान-दर्शन बढ़े, वह पोला नहीं, मजबूत है। आहाहा! पर को जानने-देखने से विशेष बढ़ा, तथा वह वजनी दीवार हो गया। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा पर को देखने की निरपेक्षरूप से यहाँ तो ना करते हैं। पर की अपेक्षा भी यहाँ नहीं लेना। आहाहा! यहाँ पर की दया पालो तो धर्म होगा, पर की सेवा करो तो धर्म होगा... आहाहा! भगवान की भक्ति करो तो मुक्ति होगी, (ऐसा नहीं है)। होता है, व्यवहार होता है, व्यवहार नहीं होता—ऐसा नहीं है। परन्तु उसकी मर्यादा शुभभाव पुण्य जितनी मर्यादा है, बन्धन जितनी मर्यादा है; उससे जरा भी आत्मा को संवर-निर्जरा या शुद्धता का अंश प्रगट हो, ऐसा नहीं है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में तो आया न, शुभभाव में शुद्धता का अंश है। चिट्ठी में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे (परिशिष्ट में) तील चिट्ठी है। एक चिट्ठी में ऐसा आया है। समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : शुभ में शुद्ध का अंश।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें शुभ में शुद्ध का अंश कहा। उसे पकड़ते हैं। वह तो किस अपेक्षा से कहा? कि एक गुण बढ़ने पर दूसरा गुण उसके कारण बढ़ता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा? कि आत्मा में अनन्त गुण हैं। उसमें एक ज्ञान का गुण बढ़े तो साथ में चारित्र्य का गुण भी बढ़े, ऐसा नहीं है। यह सिद्ध करने के लिये उस शुभभाव में, जरा शुद्धता का अंश है। परन्तु काम कब करेगा? ग्रन्थिभेद करे तब। राग की एकता तोड़कर आत्मा का अनुभव आनन्द का स्वाद ले, आत्मा के आनन्द का स्वाद ले, तब जो शुद्धता का अंश था, वह तब काम करेगा। आहाहा! बहुत दृष्टान्त देते हैं। देखो! शुभ में शुद्ध का अंश है। परन्तु किसे? ग्रन्थिभेद करे उसे। वैसे तो अनादिकाल का शुभ में शुद्ध का अंश है और अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया तो भी शुभ में शुद्ध का अंश था तो भी कुछ हुआ नहीं। आहाहा! वाँचन भी इतना नहीं होता। पूरे दिन पाप का पोटला। व्यापार... व्यापार... व्यापार... धन्धा... धन्धा...। आहाहा! १६६ गाथा बहुत सरस ली है। आहाहा!

श्लोक - २८२

[अब, इस १६६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

पश्यत्यात्मा सहज-परमात्मान-मेकं विशुद्धं,
स्वान्तःशुद्ध्यावसथमहिमाधारमत्यन्तधीरम् ।
स्वात्मन्युच्चै-रविचलतया सर्वदान्तर्निमग्नं,
तस्मिन्नैव प्रकृति-महति व्यावहार-प्रपञ्चः ॥२८२॥

(वीरछन्द)

जो है एक विशुद्ध और निज अन्तः शुद्धि का आवास ।
महिमामय, अत्यन्त धीर, निज आत्मा में नित अविचल वास ॥
निश्चय से यह आत्मा ऐसे सहज एक परमात्म को ।
उसको नित निरखे जिसमें व्यवहार प्रपञ्च न किञ्चित हो ॥२८२॥

[श्लोकार्थः—] (*निश्चय से) आत्मा सहज परमात्मा को देखता है—कि जो परमात्मा एक है, विशुद्ध है, निज अन्तःशुद्धि का आवास होने से (केवलज्ञानदर्शनादि) महिमा का धारण करनेवाला है, अत्यन्त धीर है और निज आत्मा में अत्यन्त अविचल होने से सर्वदा अन्तर्मग्न है । स्वभाव से महान ऐसे उस आत्मा में *व्यवहारप्रपञ्च (विस्तार) है ही नहीं । (अर्थात् निश्चय से आत्मा में लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं) ॥२८२॥

* यहाँ निश्चय-व्यवहार सम्बन्धी ऐसा समझना कि—जिसमें स्व की ही अपेक्षा हो, वह निश्चयकथन है और जिसमें पर की अपेक्षा आये, वह व्यवहारकथन है; इसलिए केवली भगवान लोकालोक को—पर को जानते-देखते हैं—ऐसा कहना, वह व्यवहारकथन है और केवली भगवान स्वात्मा को जानते-देखते हैं—ऐसा कहना, वह निश्चयकथन है । यहाँ व्यवहारकथन वाच्यार्थ ऐसा नहीं समझना कि जिस प्रकार छद्मस्थ जीव लोकालोक को जानता-देखता ही नहीं है, उसी प्रकार केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते ही नहीं हैं । छद्मस्थ जीव के साथ तुलना की अपेक्षा से तो केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं, वह बराबर सत्य है—यथार्थ है, क्योंकि वे त्रिकाल

श्लोक -२८२ पर प्रवचन

अब श्लोक । २८२ न ।

पश्यत्यात्मा सहज-परमात्मान-मेकं विशुद्धं,
स्वान्तःशुद्ध्यावसथमहिमाधारमत्यन्तधीरम् ।
स्वात्मन्युच्चै-रविचलतया सर्वदान्तर्निमग्नं,
तस्मिन्नैव प्रकृति-महति व्यावहार-प्रपञ्चः ॥२८२॥

आहाहा! (निश्चय से)... नीचे है । यहाँ निश्चय-व्यवहार सम्बन्धी ऐसा समझना कि—जिसमें स्व की ही अपेक्षा हो, वह निश्चयकथन है.... नीचे । और जिसमें पर की अपेक्षा आये, वह व्यवहारकथन है; इसलिए केवली भगवान लोकालोक को—पर को जानते-देखते हैं—ऐसा कहना, वह व्यवहारकथन है और केवली भगवान स्वात्मा को जानते-देखते हैं—ऐसा कहना, वह निश्चयकथन है । यहाँ व्यवहारकथन वाच्यार्थ ऐसा नहीं समझना कि जिस प्रकार छद्मस्थ जीव लोकालोक को जानता-देखता ही नहीं है, उसी प्रकार केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते ही नहीं हैं । व्यवहार से कहा है, इसलिए जानते-देखते नहीं, ऐसा नहीं मानना । आहाहा ! केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा । छद्मस्थ बिल्कुल नहीं जानते, ऐसे नहीं जानते-ऐसा नहीं कहना है । मात्र पर की अपेक्षा रखकर व्यवहार कहा है । जानते तो सब हैं । तीन काल-तीन लोक एक समय में जानते हैं । आहाहा !

वास्तव में तो अनन्त गुण जो आत्मा में हैं, उनमें एक ज्ञानगुण की एक ही पर्याय, एक ही पर्याय जगत में है, बस । क्योंकि वह पर्याय द्रव्य को जानती है, गुण को जानती है, अनन्त पर्यायों को जानती है, लोकालोक को जानती है । उस ज्ञान की एक पर्याय में

सम्बन्धी सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को यथास्थित बराबर परिपूर्णरूप से वास्तव में जानते-देखते हैं । 'केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं' ऐसा कहते हुए पर की अपेक्षा आती है, इतना ही सूचित करने लिए, तथा केवली भगवान जिस प्रकार स्व को तद्रूप होकर निजसुख के संवेदनसहित जानते-देखते हैं, उसी प्रकार लोकालोक को (पर को) तद्रूप होकर परसुखदुःखादि के संवेदनसहित नहीं जानते-देखते, परन्तु पर से बिलकुल भिन्न रहकर, पर के सुखदुःखादि का संवेदन किये बिना जानते-देखते हैं, इतना ही सूचित करने के लिए उसे व्यवहार कहा है ।

पूरा लोकालोक आ गया। आहाहा! समझ में आया? एक बार कहा था। (संवत्) १९८५ के वर्ष में। वढ़वाण में। बढ़वाण में नाराणभाई की दीक्षा थी। बाहर वह जति का ढेला नहीं? बाहर ढेला में। उस दिन की बात है। वीरजीभाई साथ में थे। कहा, देखो भाई! वास्तव में तो एक आत्मा की एक पर्याय—एक ज्ञान की एक पर्याय लोकालोक को जाने, अपने द्रव्य को जाने, गुण को जाने, अपनी अनन्त पर्याय को जाने, अपने को जाने। एक पर्याय में इतना सामर्थ्य है। आहाहा!

भगवान अन्दर है। परिपूर्ण परमात्मशक्ति पड़ी है। परमेश्वर है। उसकी शक्ति की बात क्या करना? आहाहा! उसके अनन्त गुण, उसकी अनन्त पर्याय, उसमें एक ही ज्ञान की पर्याय... आहाहा! अपने को जानने में पर का जानना आ गया। वह पर्याय अपने को जाने, उसमें लोकालोक आ गया। उसकी पर्याय का सामर्थ्य है। वह लोकालोक है तो लोकालोक को जानती है, ऐसा भी नहीं है। इतनी अपेक्षा नहीं, निरपेक्ष है। आहाहा! एक समय की पर्याय पर की अपेक्षा बिना लोकालोक और अपने अनन्त गुण और अनन्त पर्याय को एक समय की पर्याय जानती है। शान्तिभाई! यह सब कभी सुना नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय में कितनी शक्ति है!

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में इतनी शक्ति है। हीरा-माणिक में समय बिताया हो, उसमें यह खबर कहाँ पड़े? ऐसी उसमें शक्ति है। आहाहा! एक पर्याय, हों! ऐसी अनन्त पर्यायें। प्रत्येक पर्याय में अनन्त ताकत। इस ज्ञानपर्याय में जरा ख्याल किया जा सकता है। ज्ञान द्रव्य को जाने, गुण को जाने, लोकालोक को जाने। आहाहा! ऐसी एक समय की पर्याय का अस्तित्व, वह भी पर है, उसे जाने यह अपेक्षा भी नहीं। निरपेक्षरूप से एक समय की पर्याय स्व-पर को जाननेरूप एकरूप है। स्व-पर को जाननेरूप एकरूप है, स्व-पर को जाननेवाली दो रूप नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। सुनना कठिन पड़े। वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ की बात बहुत सूक्ष्म, बापू! यह साधारण लोगों ने जैनपना ऊपर से मनवा दिया। जैन कोई अलौकिक व्यक्ति है, वह कोई सम्प्रदाय पक्ष नहीं है, वह तो वस्तु का स्वभाव, वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! यहाँ यह कहा कि केवलज्ञान की पर्याय व्यवहार से लोकालोक को जाने तो दर्शन भी पर को देखे, ऐसा नहीं कहना। निश्चय से दर्शन भी अपने को ही देखता है, पर को नहीं। आहाहा! निश्चय से यहाँ आया

न! यहाँ व्यवहारकथन वाच्यार्थ ऐसा नहीं समझना कि जिस प्रकार छद्मस्थ जीव लोकालोक को जानता-देखता ही नहीं है, उसी प्रकार केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते ही नहीं हैं। छद्मस्थ जीव के साथ तुलना की अपेक्षा से तो केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं, वह बराबर सत्य है—यथार्थ है, क्योंकि वे त्रिकाल सम्बन्धी सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को यथास्थित बराबर परिपूर्णरूप से वास्तव में जानते-देखते हैं। 'केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं' ऐसा कहते हुए पर की अपेक्षा आती है, इतना ही सूचित करने लिए, तथा केवली भगवान जिस प्रकार स्व को तद्रूप होकर.... स्व को तद्रूप होकर, ज्ञान, ज्ञान में लीन होकर निजसुख के संवेदन सहित... अपने अतीन्द्रिय आनन्द के वेदनसहित जानते-देखते हैं, उसी प्रकार लोकालोक को (पर को) तद्रूप होकर परसुखदुःखादि के संवेदन सहित नहीं जानते-देखते,... नारकी को देखे तो नारकी का दुःख का वेदन भगवान को होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जानने-देखने का स्वभाव तो अपना अपने से है। आहाहा! वह पर के कारण नहीं है।

परसुखदुःखादि के संवेदन सहित नहीं जानते-देखते, परन्तु पर से बिलकुल भिन्न रहकर, पर के सुखदुःखादि का संवेदन किये बिना जानते-देखते हैं, इतना ही सूचित करने के लिए उसे व्यवहार कहा है। बाकी निश्चय से तो अपने को आनन्दसहित वेदन करते हैं। ज्ञान आनन्दादि सर्व। जितनी ताकत लोकालोक की है, उतनी ताकत का ज्ञान अपने में है, उसे वेदन करते हैं। पर को वेदते नहीं परन्तु स्व को वेदते हैं, ऐसा यहाँ समझना चाहिए। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)